जम जाता है। यह उनका कोई आश्चर्यकारी पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु :– वीर्य कहकर पराक्रम कहना चाहते हैं।

समाधन :– हाँ, उसका पुरुषार्थ कोई अलग है। शुभभाव का पुरुषार्थ जीवने बहुत बार किया है। अशुभसे थककर शुभ में आया, शुभ में ऐसे उच्च कोटि के शुभभाव किये, मुनि हो गया, सब किया, पंच महाव्रत पाले, सब किया लेकिन शुभभावों में रुक गया। लेकिन शुभसे भी भिन्न जो शुद्धात्मा उस शुभ को भी दृश्यमेंसे निकालकर अन्तर में जो अदृश्य है उसे दृश्य किया। श्रुत का चिन्तवन भी जहाँ रहता नहीं और मात्र निर्विकल्प दशा को वह दृश्यमान करता है। इसलिये वह उनका पुरुषार्थ कोई पुरुषार्थ है, ऐश्वर्य कोई अलग है। लेकिन अभी दशा अधूरी है इसलिये बाहर आते हैं इसलिये श्रुत का चिंतवन इत्यादि शुभभाव में होता है। लेकिन वह निराले हैं, उसे हेयबुद्धिसे मानते हैं।

मुमुक्षु :– अन्दर जो शुभभाव होते हैं वह भी दृश्य है।

समाधान :– दृश्य है। उस दृश्य को भी अन्दर में भिन्न होकर स्वरूप में जम जाये तब तो सब अदृश्य हो जाता है। स्वरूप में जहाँ अन्दर जम गया, वहाँ तो उसे कुछ दिखता नहीं, अकेला आत्मा ही दृश्यमान है। बाहर आये तब उपयोग बाहर आया, दिखाई दे, लेकिन स्वयं भिन्न है। उन सब में एकत्वबुद्धि थी, ये सब मुझसे भिन्न है। ये कोई मेरा स्वरूप ही नहीं है, मैं भिन्न हूँ। अदृश्य, दूर है मुझसे। एक ज्ञायक ही उसे, रात–दिन उसे ज्ञायक ही दृष्टि में दिखाई देता है कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ। उपयोग भले बाहर जाये, उसकी दृष्टि में एक ज्ञायक ही दिखाई दे रहा है। प्रतिक्षण, निरंतर–बिना अंतर, जागते, सोते, बैठते, स्वप्न में एक ज्ञायक दिखाई देता है। (बाहर में सब) दिखाई दे लेकिन फिर भी उससे दूर है और अन्दर स्वानुभूति में तो अदृश्य ही हो गया है। अकेला आत्मा दृश्यमान है। बाहर आये तो भी आत्मा ही दृश्यमान है। ये सब तो गौण है। भिन्न है, आत्मा उससे भिन्न दृष्टिगोचर होता है।

मुमुक्षु :– बाहर आते हैं तब भी वास्तव में तो दृश्यरूप तो अपना आत्मा ही है।

समाधान :– आत्मा ही दृश्यरूप है, यह सब अदृश्य है। उपयोग में दिखे तो भी उसे तो भिन्न ही भासित होता है।

मुमुक्षु :– मुझे हीराभाईने कहा कि कोई प्रश्न हो तो पूछीये। मैंने कहा कि, पंद्रह मिनट बहिनश्री बोलेगी उसमें मुझे समाधान मिलेगा। प्रश्न की कोई जरूरत नहीं है।

समाधान :– कोई कुछ पूछता है तो निकलता है। मैं अपनेआपसे कुछ बोलती नहीं।

मुमुक्षु :– माताजी की एक पद्धति है कि कुछ पूछें तो उनके श्रीमुखसे कुछ बात नीकलती है। मैं तो ऐसा मानता हूँ, मेरी प्रार्थना स्वीकार हुई है और आप पंद्रह मिनट बोलने लगे। : आप जो कहते हो वही समाधान है।

समाधान :– ऐसे कोई महेमान आते हैं... कोई महेमान हररोज आते हैं, कुदरती होता

है, उसमें कई बार बन्द भी हो जाता है। ऐसा कोई बार होता है।

मुमुक्षु :- उसमें कुछ नहीं। आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो तो उसमें क्या हो गया? आप की करुणा है वह तो दिखाई देता है।

समाधान :- आज तो बन्द रखने जैसा था, फिर भी चालू रखा। कोई महेमान आयेंगे तो? ऐसा समझकर चालू रखा। थोड़े दिनसे श्रम था इसलिये। दो दिन मन्दिर गयी थी।

मुमुक्षु :- वह सब बात मैंने कही। भाई को लाते वक्त ही मैंने कहा, आज कदाचित् गुंजाईश कम है। माताजी दो दिनसे मन्दिर पधारे हैं और पाँच दिनों का श्रम लगा है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी समाधान तो करते हैं, लेकिन समाधान को खुद काम में नहीं ले तो समाधान होता नहीं। आप जो कुछ बोलती हों उसमें मुझे समाधान हो जाता है। इसीमें समाधान खोजना है, समाधान बाहर कहाँ है।

समाधान :- समाधान खुद करे तो होता है, अंतर में (समाधान) है। जिसकी तैयारी हो और उसमें जिसे कुछ विचार आते हो, उसमेंसे पूछे इसलिये उसके जवाब आते हैं। इसलिये कुदरती थोड़ा दीर्घ स्पष्टीकरण किया जाता है इसलिये सहज ही हो जाता है।

मुमुक्षु :- उसमें सब समाधान है। आधे घण्टे मैं माताजी, इतना निकलता है कि हमें तो ऐसा लगता है कि हम गुरुदेव के पास ही बैठे हैं।

समाधान :- गुरुदेव तो गुरुदेव ही थे, वह तो अलग बात थी। सभी के प्रश्न आते हैं इसलिये जवाब देती हूँ।

मुमुक्षु :- वर्तमान परिस्थिति में गुरुदेव की कमी आपसे पूरी होती है, मुझे इतना कहना है। और अभी-अभी तो दो-चार पत्र आये थे उसके जवाब में मैं तो लिखता हूँ कि, पहले गुरुदेव के समय में रहने जैसा था, वैसा अभी फिरसे (रहने जैसा है।)

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा-सी.डी.-४ B

समाधान :- .... सत् के संस्कार अन्दर गहरे हो, गहरे हो तो काम आते हैं। गहरे नहीं हो तो उससे .. सत् के संस्कार जो वर्तमान में खुदने संचित किये हैं, वह स्वयं अन्दरसे .. दूसरे भव में जहाँ जाता है वहाँ स्फूरायमान होते हैं। यही चाहिये, यह चैतन्य पदार्थ कोई आश्चर्यकारी है, महिमावंत है। उसकी रुचि जिसे गहराईसे लगे, गहराईसे लगे तो वह अन्दरसे प्रगट हुए बिना रहता नहीं। लेकिन वह बाहरसे नहीं आता। अन्तर में खुद को गहराईसे हो तो प्रगट होता है। बाहरसे संस्कार नहीं डालने हैं, अन्दर संस्कार संचित होते हैं।

प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र परिणमन है इसलिये अपने आप ही सब हो जाता है ऐसा

नहीं है। उसे कोई कर नहीं देता, लेकिन स्वयं पुरुषार्थ करे तो हो सके ऐसा है। देव–गुरु–शास्त्र निमित्त हैं, लेकिन उपादान खुद का है। स्वयं करे तो हो सके ऐसा है। गहरे हो तो काम आते हैं। बाकी ऊपर–ऊपरसे हो तो वह काम नहीं आते।

मुमुक्षु :– गहरे संस्कार हो फिर भी साथ में प्रयत्न तो चालू ही रहना चाहिये। संस्कार के आधार पर बैठे नहीं रह सकते।

समाधान :– प्रयत्न तो चालू (रहता है), जिसे अन्दर में रुचि है उसका प्रयत्न चालू ही रहता है। उसका प्रयत्न छूट नहीं जाता। जिसे अन्दर में रुचि है उसका वह प्रयत्न छूट नहीं जाता। प्रत्येक का परिणमन स्वतंत्र है इसलिये जैसे होना होगा वैसे होगा, ऐसा अर्थ नहीं है। उसका पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। जैसे होना होगा वैसे होगा। पुरुषार्थ स्वयं करे तो उस अनुसार उसकी परिणमन की गति होती है। पुरुषार्थ उसमें कारण बनता है। अपने आप होता है (लेकिन) पुरुषार्थ के सम्बन्धवाला है। पुरुषार्थ नहीं हो तो होता नहीं। जो मोक्ष की ओर परिणमन होता है वह पुरुषार्थसे होता है। जो होनेवाला होगा वह होगा उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि बिना पुरुषार्थ होता है। ऐसा उसका अर्थ नहीं है कि पुरुषार्थ नहीं करे और हो जाये। उसे पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। मोक्ष की ओर जो परिणमन हो वह अपने पुरुषार्थ के कारण होता है।

कोई ऐसा कहे कि जैसे होना होगा वह होगा। ऐसे नहीं है। पुरुषार्थ करे। पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। क्रमबद्ध और पुरुषार्थ का सम्बन्ध है। जो पुरुषार्थ करे उसका क्रमबद्ध मोक्ष की ओर का होता है। पुरुषार्थ की ओर जिसकी दृष्टि नहीं है, पुरुषार्थ जिसे करने का भाव ही नहीं है तो उसका क्रमबद्ध मोक्ष की ओर होता ही नहीं। क्रमबद्ध का और पुरुषार्थ का सम्बन्ध है। जैसे होना होगा वैसे होगा, पुरुषार्थ का क्या काम है? ऐसा भाव रखे तो ऐसे कुछ होता नहीं। पुरुषार्थ के साथ सम्बन्ध है। भगवानने जिसकी मुक्ति देखी है वह पुरुषार्थसे देखी है। जिसे पुरुषार्थ करना नहीं है और स्वच्छन्दतासे वर्तता है तो उसकी मुक्ति का परिणमन भगवान के ज्ञान में आता नहीं। पुरुषार्थी होते हैं उसका ही परिणमन मोक्ष की ओर होता है। उसे अंतर रुचि हो कि मेरे आत्मा का कैसे कल्याण हो? आत्मा महिमावंत है, यह सब मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान करने का प्रयत्न करे। अन्दरसे बार–बार रटन करे, याद करे, चिन्तवन करे, ऐसा करे तो होता है। किये बिना अपने आप होता नहीं। इंतज़ार करता रहे कि जैसे होना होगा वैसे होगा और आ जायेग। ऐसे नहीं होता। खुद को अन्दर खटक लगनी चाहिये, स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है।

मुमुक्षु :– पुरुषार्थ करे तो ही प्राप्त हो न? माताजी!

समाधान :– पुरुषार्थ करे तो ही प्राप्त होता है, बिना पुरुषार्थ प्राप्त नहीं होता। जिसे अंतर्मुहूर्त में होता है वह पुरुषार्थसे ही होता है। पुरुषार्थ स्वयं की ओर एकदम तीव्रतासे होता है। उसका चैतन्य ओर का पुरुषार्थ एकदम शुरु हो जाता है।

मुमुक्षु :- सनातन धर्म क्या है, समझाइये।

समाधान :- सनातन धर्म? सनातन धर्म यानी जो अनादि का धर्म है, जो आत्मा का धर्म है वह सनातन धर्म है। जो आत्मा का धर्म वह सनातन। सनातन यानी पुराना। पुराना यानी जो अनादिसे चला आ रहा है वह। आत्मा का स्वभाव धर्म है। आत्मा का जो ज्ञानस्वभाव है उस रूप ज्ञानस्वभाव को प्रगट करना, ज्ञायक को ज्ञायकरूप प्रगट करना, वीतराग स्वरूप है उसे वीतरागरूप प्रगट करना वह सनातन धर्म है।

मुमुक्षु :- पुराना..

समाधान :- पुराना जो आत्मा का स्वभाव अनादिथी शाश्वत है उसे प्रगट करना वह सनातन है।

मुमुक्षु :- धर्म का स्वरूप क्या है?

समाधान :- धर्म का स्वरूप-धर्म यानी धर्म आत्मा में है। जो जिसका स्वभाव है वह धर्म है। बाह्यसे जो धर्म कहने में आता है वह शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान की भक्ति करे, भगवान की पूजा करे, शास्त्र स्वाध्याय करे, शास्त्र पढ़े, तत्त्व के विचार करे वह सब धर्म कहलाता है। वह धर्म पुण्यबन्ध कहलाता है। उससे पुण्य होता है, शुभभाव होता है, उससे देवलोक प्राप्त होता है, भव का अभाव नहीं होता।

भव का अभाव जो अन्दर आत्मा का स्वभाव है, जो जाननेवाला अनादि का ज्ञायक स्वभाव है उसे प्रगट करे तो धर्म होता है। आत्मा में धर्म (है)। लेकिन वह नहीं हो तबतक विचार करे, वांचन करे ऐसे सब शुभभाव होते हैं। उस शुभभाव को व्यवहारसे धर्म कहने में आता है।

मुमुक्षु :- सच्चा सुख कहाँ है?

समाधान :- सच्चा सुख भी आत्मा में है। आत्मा में ही है, बाहर सुख नहीं है। बाहर जो सुख माना है वह सुख बाहर नहीं है। धन मिले, शरीर अच्छा हो, सब अनुकूलताएँ मिले, मान-सन्मान मिले ऐसा सब होता है वह कोई सुख नहीं है। वह तो कल्पित सुख है। मकान मिले और उसमें सुख माने तो वह सुख नहीं है, वह तो मात्र कल्पना है। बाहर में सुख नहीं है, सुख अन्दर आत्मा में है। बाहर कहीं भी, विकल्पों में, राग में कहीं भी सुख नहीं है। जो वीतरागी भाव अन्दर आत्मा में है उसमें सुख है, उसमें आनन्द है, सब आत्मा में है। बाहर कहीं सुख नहीं है। मात्र भ्रान्ति से माना है कि मुझे बाहरसे सुख मिलता है। सुख बाहर कहीं भी नहीं है। सब कल्पना है। ऐसा सुख शाश्वत नहीं रहता, मात्र कल्पित सुख है, वह आत्मा का सुख नहीं है। मात्र बाह्य संयोग में सुख माना है। वह सुख नहीं है।

सुख आत्मा में है। जो उसका स्वभाव है, आत्मा का सहज स्वभाव है-जानना, देखना, लीनता, चारित्र, अन्दर आत्मा में सुख है, आत्मा में आनन्द है, वह आनन्द आत्मा का कोई अपूर्व है, जिसे उपमा नहीं दे सकते। ऐसा आत्मा में आनन्द और सुख भरा है कि

जिस सुख को किसीकी उपमा, कोई देवलोक की या कोई चक्रवर्ती के राज्य की भी जिसे उपमा दे नहीं सकते, ऐसा सुख आत्मा में भरा है। और वह अनुपम है। वह सुख कैसे प्रगट हो? कि आत्मा को पहचाने। यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह राग मैं नहीं हूँ, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसे आत्मा को पहचाने, उसका भेदज्ञान हो, उसमें लीनता करे तो वह सुख प्रगट होता है। विकल्प छूटकर आत्मा में लीन हो तो वह सुख आत्मामेंसे कोई अपूर्व आनन्द प्रगट होता है कि जो आनन्द चक्रवर्ती के राज्य में कहीं भी नहीं है। वह सुख आत्मा में है।

मुमुक्षु :– महावीरस्वामी को जब साप दंश मारता है, तब खून निकलने के बदले दूध निकला, ऐसा उन्होंने विश्व को प्रेम किया, ऐसा प्रेम करना हो तो कैसा पुरुषार्थ करना? महावीरस्वामी का हम .. बनाते हैं, साँप उनको दंश मारता है तब दूध निकलता है तो समस्त विश्व को प्रेम किया। साँप को भी उनके पाससे दूध मिलता है। ऐसा प्रेम करना हो तो हमें किसप्रकार का पुरुषार्थ करना पड़े?

समाधान :– भगवान की वाणी छूटी, उस वाणीसे सबको वीतरागी भावसे उपदेश मिला। भगवान की वाणी ऐसी छूटी, भगवान को इच्छा नहीं थी, लेकिन ऐसी वाणी छूटी कि आप यह धर्म करो। मैं भिन्न हूँ। भगवानने चाहे जैसे उपसर्ग आये उसे बाहरसे सहन किये। उन्होंने राग–द्वेष नहीं किया था, वीतराग थे। उन्हें बाहरसे चाहे जैसे उपसर्ग आये, साँपने दंश मारा या नहीं मारा, लेकिन भगवान को कोई सर्प दंश मारे ऐसा नहीं बनता लेकिन बाहरसे उनको उपसर्ग आये, वह उपसर्ग सहन करने पड़े, परिषह आये, उन्होंने सहन किये लेकिन वे आत्मा में एकदम लीन थे। किसीपर भी उन्होंने राग–द्वेष किया नहीं, वीतराग थे। किसी पर राग किया नहीं, किसी पर द्वेष किया नहीं कि ये मेरा शत्रु है ऐसा भी नहीं माना, ये मेरा मित्र है ऐसा भी नहीं भगवानने माना नहीं। भगवान तो आत्मा में लीन हो गये और वीतरागता प्रगट हुई। ऐसे भगवान की भाँति राग–द्वेष को टाले तो अंतरमेंसे ऐसी समता प्रगट हो। जगत का प्रेम प्राप्त करना वह अपने हाथ की बात नहीं है। अन्दरसे समता प्रगट करनी अपने हाथ की बात है।

चाहे जैसे उपसर्ग और परिषह आये तो भी अन्दर शांति और समता रखे, वीतरागता प्रगट करे वह अपने हाथ में है। बाहर विश्वर के साथ प्रेम करना वह कर नहीं सकता। किसीका मन कैसा हो, किसीका कैसा हो। स्वयं अन्दर वीतरागता प्रगट करे तो हो सकता है। राग–द्वेष नहीं करे। मैं जाननेवाला ज्ञान हूँ। मेरेमें कुछ नहीं है। मैं तो इस शरीरसे भिन्न हूँ। यह शरीर भी मेरा नहीं है। चाहे जैसे उपसर्ग आये तो भी यह शरीर मेरा नहीं है। मैं तो आत्मा हूँ। ऐसे भाव करे तो अन्दरसे–आत्मामेंसे समता प्रगट होती है। राग–द्वेष खुद टाले तो सब बाहरसे बदल जाये। राग–द्वेष टाले तो। बाहर में फेरफार करना अपने हाथ की बात नहीं है, स्वयं राग–द्वेष टाले।

उसमें आता है कि सर्पने दंश मारा तो दूध निकला। भगवान को बहुत उपसर्ग आये

हैं। भगवान तो सर्प के ऊपर खड़े रहकर भगवान ने खेल किये हैं। सर्प उन्हें कुछ नहीं कर सका। लेकिन स्वयं अन्दर वीतराग थे, उन्हें कोई राग-द्वेष नहीं था, आत्मा के ध्यान में थे। ऐसे आत्मा का ध्यान आत्मा को पहचनाकर करे तो उनके जैसी वीतरागता प्रगट हो।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा-सी.डी.-४ C

मुमुक्षु :- ज्ञानप्राप्ति की जिसे इच्छा है, उसे ज्ञानी की इच्छासे वर्तन करना, ऐसा जिनागम आदि सर्व शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छासे प्रवर्तनेसे अनादि कालसे भ्रमण किया है। उसमें क्या ... कृपया समझाईये।

समाधान :- जिसे आत्मा का स्वरूप समझना हो और आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति करनी हो, आत्मा का स्वरूप प्राप्त करना हो तो वह खुद अनादिसे जिसप्रकार अपनी इच्छासे एकत्वबुद्धिसे वर्तता है ऐसे नहीं वर्तते हुए, ज्ञानी क्या कहते हैं और ज्ञानी का कहने का क्या आशय है, इसप्रकार वर्तन करनेसे उसे अंतरमेंसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

खुद तो अनादिसे भ्रम में पड़ा है। क्योंकि स्वरूप को तो जानता नहीं और जिसने जाना है, उनकी इच्छासे अर्थात् वे जो कहना चाहते हैं, वे जो कहना चाहते हैं उसका आशय ग्रहणकरके तत्त्व का क्या स्वरूप कहते हैं, ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो? आत्मा क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है? ये परद्रव्य-स्वद्रव्य क्या है? और भेदज्ञान कैसे करना? अंतर आत्मा को कैसे पहचानना? द्रव्य पर कैसे दृष्टि करनी? द्रव्य-गुण-पर्याय का क्या स्वरूप है? ज्ञानी जो वह स्वरूप कहते हैं, स्वानुभूति कैसे प्राप्त हो? जो स्वरूप कहते हैं, उनका कहने का जो आशय है, उस आशय अनुसार खुद समझकर उस रूप परिणमन करना। तो उसके भव का अभाव हो और ज्ञान की प्राप्ति होती है।

अपनी इच्छासे यानी खुद अनादिकालसे अपने स्वच्छन्दसे वर्तता है, स्वद्रव्य और परद्रव्य में एकत्वबुद्धिसे, द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप अपनी मतिकल्पनासे जैसे ठीक पड़े वैसे मान रहा है, अपनी कल्पनासे इसका ऐसा है, इसका ऐसा है, अर्थ कर रहा है, ऐसे वर्तन नहीं करके, ज्ञानी जो कहते हैं उस अनुसार उसका आशय समझकर उस रूप परिणमन करे तो ज्ञान की प्राप्ति होती है।

मुमुक्ष :- माताजी! प्रश्न क्या होता है? कि वह सत्शास्त्र पढे तो उसे ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती?

समाधान :- वह शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र में सब रहस्य आता है, लेकिन जिसे साक्षात् प्राप्ति हुई है, उसका जो आशय ग्रहण होता है वह अलग प्रकारसे होता है। उसमें-शास्त्र